जैन ज्योतिष साहित्य का सर्वेक्षण

डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री

एम. ए., पी.एच. डी., डी. लिट्., आरा

"ज्योतिषां सूर्यादि ग्रहाणां बोधकं शास्त्रं"—सूर्यादि ग्रह और काल करनेवाला शास्त्र ज्योतिष कहलाता है। अत्यन्त प्राचीन काल से आकाश–मण्डल मानव के लिए कौतूहल का विषय रहा है। सूर्य और चन्द्रमा से परिचित हो जाने के उपरान्त ताराओं, ग्रहों एवं उपग्रहों की जानकारी भी मानव ने प्राप्त की। जैन परम्परा बतलाती है कि आज से लाखों वर्ष पूर्व कर्मभूमि के प्रारम्भ में प्रथम कुलकर प्रति श्रुति के समय में, जब मनुष्यों को सर्वप्रथम सूर्य और चन्द्रमा दिखलायी पडे, तो वे इतने सशंकित हुआ और अपनी उत्कंठा शान्त करने के लिए उक्त प्रतिश्रुति नामक कुलकर-मनु के पास गये। उक्त कुलकर ने सौर-ज्योतिष के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आगमिक परम्परा अनवच्छिन्नरूप से अनादि होने पर भी इस युग में ज्योतिष साहित्य की नींव का इतिहास यहीं से आरम्भ होता है। यों तो जो ज्योतिष-साहित्य आजकल उपलब्ध है, वह प्रतिश्रुति कुलकर से लाखों वर्ष पीछे का लिखा हुआ है।

जैन ज्योतिष–साहित्य का उद्भव और विकास :— आगमिक दृष्टि से ज्योतिष शास्त्र का विकास विद्यानुवादांग और परिकर्मों से हुआ है। समस्त गणित–सिद्धान्त ज्योतिष–परिकर्मों में अंकित था और अष्टांग निमित्त का विवेचन विद्यानुवादांग में किया गया था। षट्खंडागम धवला–टीका[1] में रौद्र श्वेत, मैत्र, सारगट, दैत्य, वैरोचन, वैश्वदेव, अभिजित्, रोहण, बल, विजय, नैऋत्य, वरुण, अर्यमन् और भाग्य ये पन्द्रह मुहूर्त आये हैं। मुहूर्तों की नामावली वीरसेन स्वामी की अपनी नहीं है, किन्तु पूर्व परम्परा से प्राप्त श्लोकों को उन्होनें उद्धृत किया है। अतः मुहूर्त चर्चा पर्याप्त प्राचीन है।

प्रश्नव्याकरण में नक्षत्रों की मीमांसा कई दृष्टिकोणों से की गयी है। समस्त नक्षत्रों को कुल, उपकुल और कुलोपकुलों में विभाजन कर वर्णन किया गया है। यह वर्णन प्रणाली ज्योतिष के विकास से अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद, अश्विनि, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, मूल एवं उत्तराषाढा ये नक्षत्र कुलसंज्ञक, श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, ज्येष्ठा, एवं पूर्वाषाढा ये नक्षत्र उपकुलसंज्ञक और अभिजित्, शतमिषा, आर्द्रा एवं अनुराधा कुलोपकुल संज्ञक हैं। यह कुलोपकुल का विभाजन पूर्णमासी को

१. धवलाटीका, जिल्द ४, पृ. ३१८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होनेवाले नक्षत्रों के आधार पर किया गया है। अभिप्राय यह है कि श्रावण मास के धनिष्ठा, श्रवण और अभिजित् भाद्रपदमास के उत्तराभाद्रपद, पूर्वाभाद्रपद और शतमिषा; आश्विनमास के अश्विनी और रेवती, कार्तिकमास के कृत्तिका कौर भरणी, अगहन या मार्गशीर्ष मास के मृगशिरा और रोहिणी, पौषमास के पुष्य, पुनर्वसु और आर्द्रा, माघमास के मघा और आश्लेषा, फाल्गुनमास के उत्तराफाल्गुनी और पूर्वाफाल्गुनी, चैत्रमास के चित्रा और हस्त, वैशाखमास के विशाखा और स्वाति, ज्येष्ठमास के ज्येष्ठा, मूल और अनुराधा एवं अषाढमास के उत्तराषाढा और पूर्वाषाढा नक्षत्र बताए गए हैं।[1] प्रत्येक मास की पूर्णमासी को उस मास का प्रथम नक्षत्र कुलसंज्ञक, दूसरा उपकुलसंज्ञक और तीसरा कुलोपकुल संज्ञक होता है। इस वर्णन का प्रयोजन उस महीने का फलनिरूपण करना है। इस ग्रन्थ में ऋतु, अयन, मास, पक्ष और तिथि सम्बन्धी चर्चाएँ भी उपलब्ध हैं।

समवायाङ्ग में नक्षत्रों की ताराएँ, उनके दिशाद्वार आदि का वर्णन है। कहा गया है--"कत्ति-आइया सत्तणक्खत्ता पुव्वदारिआ। महाइया तत्तणक्खत्ता दाहिणदारिआ। अणुराहा-इया सत्तणक्खता अवरदारिआ। धनिट्ठाइया सत्तणक्खता उत्तरदारिआ"[2] अर्थात् कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा ये सात नक्षत्र पूर्वद्वार, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति और विशाखा ये नक्षत्र दक्षिणद्वार, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित् और श्रवण ये सात नक्षत्र पश्चिमद्वार एवं धनिष्ठा, शतमिषा पूर्वाभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी ये सात नक्षत्र उत्तरद्वार वाले हैं। समवायांग १।६, २।४, ३।२, ४।३, ५।९ में आयी हुई ज्योतिष चर्चाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

ठाणांग में चन्द्रमा के साथ स्पर्श योग करनेवाले नक्षत्रों का कथन किया गया है। वहाँ बतलाया गया है—कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा ये आठ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ स्पर्शयोग करनेवाले हैं। इस योग का फल तिथियों के अनुसार विभिन्न प्रकार का होता है। इसी प्रकार नक्षत्रों की अन्य संज्ञाएँ तथा उत्तर, पश्चिम, दक्षिण और पूर्व दिशा की ओर से चन्द्रमा के साथ योग करनेवाले नक्षत्रों के नाम और उनके फल विस्तार पूर्वक बतलाये गये हैं। ठाणांग में अंगारक, काल, लोहिताक्ष, शनैश्चर, कनक, कनक-कनक, कनक-वितान, कनक-संतानक, सोमहित, आश्वासन, कज्जीवग, कर्वट, अयस्कर, दंदुयन, शंख, शंखवर्ण, इन्द्राग्नि, धूमकेतु, हरि, पिंगल, बुध, शुक्र, वृहस्पति, राहु, अगस्त, भानवक, काश, स्पर्श, धुर, प्रमुख, विकट, विसन्धि, विमल, पीपल, जटिलक, अरुण, अगिल, काल, महाकाल, स्वस्तिक, सौवास्तिक, वर्द्धमान, पुष्पमानक, अंकुश, प्रलम्ब, नित्यलोक, नित्योदचित, स्वयंप्रभ, उसम, श्रेयंकर, प्रेयंकर, आयंकर, प्रभंकर, अपराजित, अरज, अशोक, विगतशोक, निर्मल, विमुख, वितत, वित्रस्त, विशाल, शाल, सुव्रत, अनिवर्तक, एकजटी, द्विजटी, करकरीक, राजगल, पुष्पकेतु, एवं भावकेतु आदि ८८ ग्रहों के नाम बताए गये हैं।[3] समवायांग में भी उक्त ८८ ग्रहों का कथन आया है। "एगमेगस्सणं चंदिम सूरियस्स अट्ठासीइ महग्गहा परिवारो"[4] अर्थात् एक एक चन्द्र और सूर्य के परिवार, में अट्ठासी-

१. प्रश्नव्याकरण, १०.५.
२. समवायांग, स. ६, सूत्र ५.
३. ठाणांग, पृ. ९८-१००.
४. समवायांग, स. ८८.१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठासी महाग्रह हैं। प्रश्न–व्याकरण में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र, शनि, राहु और केतु या धूमकेतु इन नौ ग्रहों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है।

समवायांग में ग्रहण के कारणों का भी विवेचन मिलता है।[1] इस में राहु के दो भेद बतलाये गये हैं—नित्यराहु और पर्वराहु। नित्यराहु को कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष का कारण तथा पर्वराहु को चन्द्रग्रहण का कारण माना है। केतु, जिसका ध्वजदण्ड सूर्य के ध्वजदण्ड से ऊँचा है, भ्रमणवश वही केतु सूर्यग्रहण का कारण होता है।

दिनवृद्धि और दिनह्रास के सम्बन्ध में भी समवायांग में विचार–विनिमय किया गया है। सूर्य जब दक्षिणायन में निषध–पर्वत के आभ्यंतर मण्डल से निकलता हुआ ४४ वें मण्डल–गमन मार्ग में आता है, उस समय $\frac{६१}{६२}$ मुहूर्त दिन कम होकर रात बढती है—इस समय २४ घटी का दिन और ३६ घटी की रात होती है। उत्तरदिशा में ४४ वें मंडल–गमन मार्ग पर जब सूर्य आता है, तब $\frac{६१}{६२}$ मुहूर्त दिन बढने लगता है। और इस प्रकार जब सूर्य ९३ वें मंडल पर पहुँचता है, तो दिन परमाधिक ३६ घटी का होता है। यह स्थिति आषाढी पूर्णिमा को आती है।[2]

इस प्रकार जैन आगम ग्रंथों में ऋतु, अयन, दिनमान, दिनवृद्धि, दिनह्रास, नक्षत्रमान, नक्षत्रों की विविध संज्ञाएँ, ग्रहों के मण्डल, विमानों के स्वरूप और विस्तार ग्रहों की आकृतियों आदि का फुटकर रूप में वर्णन मिलता है। यद्यपि आगम ग्रंथों का संग्रह काल ई. सन की आरंभिक शताब्दी या उसके पश्चात् ही विद्वान् मानते हैं, किन्तु ज्योतिष की उपर्युक्त चर्चाएँ पर्याप्त प्राचीन हैं। इन्हीं मौलिक मान्यताओं के आधार पर जैन ज्योतिष के सिद्धान्तों को ग्रीकपूर्व सिद्ध किया गहा है।[3]

ऐतिहासज्ञ विद्वान् गणित ज्योतिष से भी फलित को प्राचीन मानते हैं। अतः अपने कार्यों की सिद्धि के लिये समयशुद्धि की आवश्यकता आदिम मानव को भी रही होगी। इसी कारण जैन आगम ग्रन्थों में फलित ज्योतिष के बीज तिथि, नक्षत्र, योग, करण, वार, समयशुद्धि, दिनशुद्धि आदि की चर्चाएँ विद्यमान हैं।

जैन ज्योतिष–साहित्य का सांगोपांग परिचय प्राप्त करने के लिये इसे निम्न चार कालखण्डों में विभाजित कर हृदयंगम करने में सरलता होगी।

आदिकाल—	ई. पू. ३००	से	६००	ई.	तक।
पूर्व मध्य काल—	६०१	ई. से	१०००	ई.	तक।
उत्तर मध्यकाल—	१००१	ई. से	१६००	ई.	तक।
अर्वाचीन काल—	१६०१	ई. से	१८६०	ई.	तक।

१. समवायांग, स. १५.३.

२. बहिराओं उत्तराओणं कट्ठाओ सूरिए पढमं छम्मासं अयमाणे चोयालिस इमे मंडलगते अट्ठासीति एगसीट्ठ भागे मुहुत्तस्स दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता एयणीखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता सूरिए चारं चरइ।—स. ८८.४.

३. चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ के अन्तर्गत ग्रीकपूर्व जैन ज्योतिष विचारधारा शीर्षक निबन्ध, पृ. ४६२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिकाल की रचनाओं में सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, अंगविज्जा, लोकविजययन्त्र एवं ज्योतिष्करण्डक आदि उल्लेखनीय हैं।

सूर्यप्रज्ञप्ति प्राकृत भाषा में लिखित एक प्राचीन रचना है। इस पर मलयगिरि की संस्कृत टीका है। ई० सन् से दो सौ वर्ष पूर्व की यह रचना निर्विवाद सिद्ध है। इसमें पंचवर्षात्मक युग मानकर तिथि, नक्षत्रादि का साधन किया गया है। भगवान् महावीर की शासनतिथि श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से, जब कि चन्द्रमा अभिजित नक्षत्र पर रहता है, युगारम्भ माना गया है।

चन्द्रप्रज्ञप्ति में सूर्य के गमनमार्ग, आयु, परिवार आदि के प्रतिपादन के साथ पंचवर्षात्मक युग के अयनों के नक्षत्र, तिथि और मास का वर्णन भी किया गया है।

चन्द्रप्रज्ञप्ति का विषय प्रायः सूर्यप्रज्ञप्ति के समान है। विषय की अपेक्षा यह सूर्यप्रज्ञप्ति से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें सूर्य की प्रतिदिन की योजनात्मिका गति निकाली गई है तथा उत्तरायण और दक्षिणायन की वीथियों का अलग-अलग विस्तार निकाल कर सूर्य और चन्द्र की गति निश्चित की गई है। इसके चतुर्थ प्राभृत में चन्द्र और सूर्य का संस्थान तथा तापक्षेत्र का संस्थान विस्तार से बताया गया है। इसमें समचतुस्त्र, विषमचतुस्त्र आदि विभिन्न आकारों का खण्डन कर सोलह वीथियों में चन्द्रमा को समचतुस्त्र गोल आकार बताया गया है। इसका कारण यह है कि सुषमा-सुषमाकाल के आदि में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन जम्बूद्वीप का प्रथम सूर्य पूर्व दक्षिण-अग्निकोण में और द्वितीय सूर्य पश्चिमोत्तर-वायव्यकोण में चला। इसी प्रकार प्रथम चन्द्रमा पूर्वोत्तर-ईशानकोण में और द्वितीय चन्द्रमा पश्चिम-दक्षिण नैऋत्य कोण में चला। अतएव युगादि में सूर्य और चन्द्रमा का समचतुस्त्र संस्थान था, पर उदय होते समय ये ग्रह वर्तुलाकार निकले, अतः चन्द्रमा और सूर्य का आकार अर्धकपीठ-अर्ध समचतुस्त्र गोल बताया गया है।

चन्द्रप्रज्ञप्ति में छायासाधन किया गया है और छाया प्रमाण पर से दिनमान भी निकाला गया है। ज्योतिष की दृष्टि से यह विषय बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यहाँ प्रश्न किया गया है कि जब अर्धपुरुष प्रमाण छाया हो, उस समय कितना दिन व्यतीत हुआ और कितना शेष रहा? इसका उत्तर देते हुए कहा है कि ऐसी छाया की स्थिति में दिनमान का तृतीयांश व्यतीत हुआ समझना चाहिए। यहाँ विशेषता इतनी है कि यदि दोपहर के पहले अर्धपुरुष प्रमाण छाया हो तो दिन का तृतीय भाग गत और दो तिहाई भाग अवशेष तथा दोपहर के बाद अर्धपुरुष प्रमाण छाया हो तो दो तिहाई भाग प्रमाण दिन गत और एक भाग प्रमाण दिन शेष समझना चाहिए। पुरुष प्रमाण छाया होने पर दिन का चौथाई भाग गत और तीन चौथाई भाग शेष, डेढ़ पुरुष प्रमाण छाया होने पर दिन का पंचम भाग गत और चार पंचम भाग (⅘ भाग) अवशेष दिन समझना चाहिये।[1]

इस ग्रंथ में गोल, त्रिकोण, लम्बी, चौकोर वस्तुओं की छाया पर से दिनमान का आनयन किया गया है। चन्द्रमा के साथ तीस मुहूर्त तक योग करनेवाले श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, अश्विनी,

१. ता अवड्ढपोरिसाणं छाया दिवसस्स किं गते सेसे वा ता तिभागे गए वा ता सेसे वा, पोरिसाणं छाया दिवस्स किं गए वा सेसे वा जाव चउभाग गए सेसे वा। चन्द्रप्रज्ञप्ति, प्र. ९.५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल और पूर्वाषाढ़ ये पन्द्रह नक्षत्र बताए गए हैं। पैंतालीस मुहूर्त तक चन्द्रमा के साथ योग करनेवाले उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, पुर्नवसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराषाढ़ा ये छः नक्षत्र एवं पन्द्रह मुहूर्त तक चन्द्रमा के साथ योग करनेवाले शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा ये छः नक्षत्र बताये गये हैं।

चन्द्रप्रज्ञप्ति के १९ वें प्राभृत में चन्द्रमा को स्वतः प्रकाशमान बतलाया है तथा इसके घटने-बढ़ने का कारण भी स्पष्ट किया गया है। १८ वें प्राभृत में पृथ्वी तल से सूर्यादि ग्रहों की ऊँचाई बतलाई गयी है।

ज्योतिष्करण्डक एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है इसमें अयनादि के कथन के साथ नक्षत्र लग्न का भी निरूपण किया गया है। यह लग्न निरूपण की प्रणाली सर्वथा नवीन और मौलिक है—

लग्गं च दक्खिणाय विसुवे सुवि अस्स उत्तरं अयणे।
लग्गं साई विसुवेसु पंचसु वि दक्खिणे अयणे॥

अर्थात् अश्विनी और स्वाति ये नक्षत्र विषुव के लग्न बताये गये हैं। जिस प्रकार नक्षत्रों की विशिष्ट अवस्था को राशि कहा जाता है, उसी प्रकार यहाँ नक्षत्रों की विशिष्ट अवस्था को लग्न बताया गया है।

इस ग्रंथ में कृत्तिकादि, धनिष्ठादि, भरण्यादि, श्रवणादि एवं अभिजित आदि नक्षत्र गणनाओं की विवेचना की गयी है। ज्योतिष्करण्ड का रचनाकाल ई. पू. ३०० के लगभग है। विषय और भाषा दोनों ही दृष्टियों से यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है।

अंगविज्जा का रचनाकाल कुषाण गुप्त युग का सन्धि काल माना गया है। शरीर के लक्षणों से अथवा अन्य प्रकार के निमित्त या चिन्हों से किसी के लिए शुभाशुभ फल का कथन करना ही इस ग्रंथ का वर्ण्य विषय है। इस ग्रंथ में कुल साठ अध्याय हैं। लम्बे अध्यायों का पाटलों में विभाजन किया गया है। आरम्भ में अध्यायों में अंगविद्या की उत्पत्ति, स्वरूप, शिष्य के गुण-दोष, अंगविद्या का माहात्म्य प्रभृति विषयों का विवेचन किया है। गृह-प्रवेश, यात्रारम्भ, वस्त्र, यान, धान्य, चर्या, चेष्टा आदि के द्वारा शुभाशुभ फल का कथन किया गया है। प्रवासी घर कब और कैसी स्थिति में लौटकर आयेगा इसका विचार ४५ वें अध्याय में किया गया है। ५२ वें अध्याय में इन्द्रधनुष, विद्युत, चन्द्रग्रह, नक्षत्र, तारा, उदय, अस्त, अमावास्या, पूर्णमासी, मंडल, वीथी, युग, संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, क्षण, लव, मुहूर्त, उल्कापात, दिशादाह आदि निमित्तों से फलकथन किया गया है। सत्ताईस नक्षत्र और उनसे होनेवाले शुभाशुभ फल का भी विस्तार से उल्लेख है। संक्षेप में इस ग्रन्थ में अष्टांग निमित्त का विस्तारपूर्वक विभिन्न दृष्टियों से कथन किया गया है।[1]

लोकविजय-यन्त्र भी एक प्राचीन ज्योतिष की रचना है। यह प्राकृत भाषा में ३० गाथाओं में लिखा गया है। इसमें प्रधानरूप से सुभिक्ष, दुर्भिक्ष की जानकारी बतलायी गयी है। आरम्भ में मंगलाचरण करते हुए कहा है—

१. अंगविज्जा, पृ. २०६-२०९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पणमिय पयारविंदे तिलोचनाहस्स जगपईवस्स ।
बुच्छामि लोयविजयं जंतं जंतूण सिद्धिकयं ॥

जगत्पति—नाभिराय के पुत्र त्रिलोकनाथ ऋषभदेव के चरणकमलों में प्रणाम करके जीवों की सिद्धि के लिये लोकविजय यन्त्र का वर्णन करता हूँ ।

इसमें १४५ से आरम्भ कर १५३ तक ध्रुवांक बतलाए गए हैं । इन ध्रुवांकों पर से ही अपने स्थान के शुभाशुभ फल का प्रतिपादन किया गया है । कृषिशास्त्र की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है ।

कालकाचार्य—यह भी निमित्त और ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् थे । इन्होंने अपनी प्रतिभा से शककुल के साहि को स्ववश किया था तथा गर्दभिल्ल को दण्ड दिया था । जैन परम्परा में ज्योतिष के प्रवर्तकों में इनका मुख्य स्थान है, यदि यह आचार्य निमित्त और संहिता का निर्माण न करते, तो उत्तरवर्ती जैन लेखक ज्योतिष को पापश्रुत समझकर अछूता ही छोड देते ।

वराहमिहिर ने बृहज्जातक में कालकसंहिता का उल्लेख किया है ।[1] निशीथ चूर्णि आवश्यक चूर्णि आदि ग्रन्थों से इनके ज्योतिष–ज्ञान का पता चलता है ।

उमास्वाति ने अपने तत्त्वार्थसूत्र में जैन ज्योतिष के मूल सिद्धान्तों का निरूपण किया है । इनके मत से ग्रहों का केन्द्र सुमेरु पर्वत है, ग्रह नित्य गतिशील होते हुए मेरु की प्रदक्षिणा करते रहते हैं । चौथे अध्याय में ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णक और तारों का भी वर्णन किया है । संक्षेप रूप में आई हुई इनकी चर्चाएँ ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ।

इस प्रकार आदिकाल में अनेक ज्योतिष की रचनाएँ हुईं । स्वतंत्र ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य विषय धार्मिक ग्रन्थों, आगम ग्रन्थों की चूर्णियों, वृत्तियों, और भाष्यों में भी ज्योतिष की महत्त्वपूर्ण बातें अंकित की गयीं । तिलोय–पण्णत्ति में ज्योतिर्मण्डल का महत्त्वपूर्ण वर्णन आया है । ज्योतिर्लोकान्धकार में अयन, गमनमार्ग, नक्षत्र एवं दिनमान आदि का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है ।

पूर्व मध्यकाल में गणित और फलित दोनों ही प्रकार के ज्योतिष का यथेष्ट विकास हुआ । इसमें ऋषिपुत्र, महावीराचार्य, चन्द्रसेन, श्रीधर प्रभृति ज्योतिर्विदों ने अपनी अमूल्य रचनाओं के द्वारा इस साहित्य की श्रीवृद्धि की ।

भद्रबाहु के नाम पर अर्हच्चूडामणिसार नामक एक प्रश्नशास्त्र सम्बन्धी ६८ प्राकृत गाथाओं में रचना उपलब्ध है । यह रचना चतुर्दश पूर्वधर भद्रबाहु की है, इसमें तो सन्देह है । हमें ऐसा लगता है कि यह भद्रबाहु वराहमिहिर के भाई थे, अतः संभव है कि इस कृति के लेखक यह द्वितीय भद्रबाहु ही होंगे । प्रारम्भ में वर्णों की संज्ञाएँ बतलायी गयी हैं । अ इ ए ओ, ये चार स्वर तथा क च ट त प य श ग ज ड द ब ल स, ये चौदह व्यंजन आलिंगित संज्ञक हैं । इनका सुभग, उत्तर और संकट नाम भी है ।

१. भारतीय ज्योतिष, पृ. २०७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ ई ऐ औ, ये चार स्वर तथा ख छ ठ थ फ र ष घ झ ठ, ध म व ह ये चौदह व्यंजन अभिधूमित संज्ञक हैं। इनका मध्य, उत्तराधर और विकट नाम भी है। उ ऊ अं अः ये चार स्वर तथा ङ. ञ ण न म य व्यंजन दग्धसंज्ञक हैं। इनका विकट, संकट, अधर और अशुभ नाम भी हैं। प्रश्न में सभी आलिंगित अक्षर हों, तो प्रश्नकर्ता की कार्यसिद्धि होती है।

प्रश्नाक्षरों के दग्ध होने पर कार्यसिद्धि का विनाश होता है। उत्तर संज्ञक स्वर उत्तर संज्ञक व्यंजनों में संयुक्त होने से उत्तरतम और उत्तराधर तथा अधर स्वरों से संयुक्त होने पर उत्तर और अधर संज्ञक होते हैं। अधर संज्ञक स्वर दग्धसंज्ञक व्यंजनों में संयुक्त होने पर अधराधरतर संज्ञक होते हैं। दग्धसंज्ञक स्वर दग्धसंज्ञक व्यंजनों में मिलने से दग्धतम संज्ञक होते हैं।[1] इन संज्ञाओं के पश्चात् फलाफल निकाला गया है। जय-पराजय, लाभालाभ, जीवन-मरण आदि का विवेचन भी किया गया है। इस छोटी-सी कृति में बहुत कुछ निबद्ध कर दिया गया है। इस कृति की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है। इसमें मध्यवर्ती क, ग और त के स्थान पर य श्रुति पायी जाती है।

करलक्खण—यह सामुद्रिक शास्त्र का छोटा-सा ग्रन्थ है। इसमें रेखाओं का महत्त्व, स्त्री और पुरुष के हाथों के विभिन्न लक्षण, अंगुलियों के बीच के अन्तराल पर्वों के फल, मणिबन्ध, विद्यारेखा, कुल, धन, ऊर्ध्व, सम्मान, समृद्धि, आयु, धर्म, व्रत आदि रेखाओं का वर्णन किया है। भाई, बहन, सन्तान आदि की द्योतक रेखाओं के वर्णन के उपरान्त अंगुष्ठ के अधोभाग में रहनेवाले यव का विभिन्न परिस्थितियों में प्रतिपादन किया गया है। यव का यह प्रकरण नौ गाथाओं में पाया जाता है। इस ग्रन्थ का उद्देश्य ग्रन्थकार ने स्वयं ही स्पष्ट कर दिया है।—

इय करलक्खणमेयं समासओ दंसिअं जइजणस्स।
पुव्वायरिएहिं णरं परिक्खऊणं वयं दिज्जा ॥६१॥

यतियों के लिए संक्षेप में करलक्षणों का वर्णन किया गया है। इन लक्षणों के द्वारा व्रत ग्रहण करनेवाले की परीक्षा कर लेनी चाहिए। जब शिष्य में पूरी योग्यता हो, व्रतों का निर्वाह कर सके तथा व्रती जीवन को प्रभावक बना सके, तभी उसे व्रतों की दीक्षा देनी चाहिए। अतः स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का उद्देश्य जनकल्याण के साथ नवागत शिष्य की परीक्षा करना ही है। इसका प्रचार भी साधुओं में रहा होगा।

ऋषिपुत्र का नाम भी प्रथम श्रेणी के ज्योतिर्विदों में परिगणित है। इन्हें गर्ग का पुत्र कहा गया है। गर्ग मुनि ज्योतिष के धुरन्धर विद्वान् थे, इसमें कोई सन्देह नहीं। इनके सम्बन्ध में लिखा मिलता है।

जैन आसीज्जगद्वंद्यो गर्गनामा महामुनिः।
तेन स्वयं सुनिर्णीत यं सत्पाशात्र केवली ॥
एतज्ज्ञानं महाज्ञानं जैनर्षिभिरुदाहृतम्।
प्रकाश्च शुद्धशीलाय कुलीनाय महात्मना ॥

---

१. अर्हच्चूडामणिसार, गाथा १-८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संभवतः इन्हीं गर्ग के वंश में ऋषिपुत्र हुए होंगे। इनका नाम ही इस बात का साक्षी है कि यह किसी ऋषि के वंशज थे अथवा किसी मुनि के आशीर्वाद से उत्पन्न हुए थे। ऋषिपुत्र का एक निमित्त शास्त्र ही उपलब्ध है। इनके द्वारा रची गयी एक संहिता का भी मदनरत्न नामक ग्रंथ में उल्लेख मिलता है। ऋषिपुत्र के उद्धरण बृहत्संहिता की महोत्पली टीका में उपलब्ध हैं।

ऋषिपुत्र का समय वराहमिहिर के पहले होना चाहिए। यतः ऋषिपुत्र का प्रभाव वराहमिहिर पर स्पष्ट है। यहाँ दो-एक उदाहरण देकर स्पष्ट किया जायगा।

ससलोहिवण्णहोवरि संकुण इत्ति होइ णायव्वो।
संजामं पुण घोरं खज्जं सूरो णिवेदई ॥—ऋषिपुत्र निमित्तशास्त्र

शशिरुधिकरीनमे मानौ नभस्थले भवन्ति संग्रामाः।—वराहमिहिर

अपने निमित्तशास्त्र में पृथ्वी पर दिखाई देनेवाले आकाश में दृष्टिगोचर होनेवाले और विभिन्न प्रकार के शब्द श्रवण द्वारा प्रकट होनेवाले इन तीन प्रकार के निमित्तों द्वारा फलाफल का अच्छा निरूपण किया है। वर्षोत्पात, देवोत्पात, राजोत्पात, उल्कोत्पात, गन्धर्वोत्पात इत्यादि अनेक उत्पातों द्वारा शुभाशुभत्व की मीमांसा बड़े सुन्दर ढंग से की है।

लग्नशुद्धि या लग्नकुंडिका नाम की रचना हरिभद्र की मिलती है। हरिभद्र दर्शन, कथा और आगम शास्त्र के बहुत बड़े विद्वान् थे। इनका समय आठवीं शती माना जाता है। इन्होंने १४४० प्रकरण ग्रन्थ रचे हैं। इनकी अब तक ८८ रचनाओं का पता मुनि जिन विजयजी ने लगाया है। इनकी २६ रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

लग्नशुद्धि प्राकृत भाषा में लिखि गयी ज्योतिष रचना है। इसमें लग्न के फल, द्वादश भावों के नाम, उनसे विचारणीय विषय, लग्न के सम्बन्ध में ग्रहों का फल, ग्रहों का स्वरूप, नवांश, उच्चांश आदि का कथन किया गया है। जातकशास्त्र या होराशास्त्र का यह ग्रन्थ है। उपयोगिता की दृष्टि से इसका अधिक महत्त्व है। ग्रहों के बल तथा लग्न की सभी प्रकार से शुद्धि—पापग्रहों का अभाव, शुभग्रहों का सद्भाव वर्णित है।

महावीराचार्य—ये धुरन्धर गणितज्ञ थे। ये राष्ट्रकूट वंश के अमोघवर्ष नृपतुंग के समय में हुए थे, अतः इनका समय ई. सन् ८५० माना जाता है। इन्होंने ज्योतिषपटल और गणितसार-संग्रह नाम के ज्योतिष ग्रन्थों की रचना की है। ये दोनों ही ग्रन्थ गणितज्योतिष के हैं? इन ग्रन्थों से इनकी विद्वत्ता का ज्ञान सहज ही में आँका जा सकता है। गणितसार के प्रारम्भ में गणित की प्रशंसा करते हुए बताया है कि गणित के बिना संसार के किसी भी शास्त्र की जानकारी नहीं हो सकती है। कामशास्त्र, गान्धर्व, नाटक, सूपशास्त्र, वास्तुविद्या, छन्दशास्त्र, अलंकार, काव्य, तर्क, व्याकरण, कलाप्रभृति का यथार्थ ज्ञान गणित के बिना संभव नहीं है; अतः गणितविद्या सर्वोपरि है।

इस ग्रंथ में संज्ञाधिकार, परिकर्मव्यवहार, कलासवर्णव्यवहार, प्रकीर्णव्यवहार, त्रैराशिव्यवहार, मिश्रकव्यवहार, क्षेत्र-गणितव्यवहार, खातव्यवहार, एवं छायाव्यवहार नाम के प्रकरण हैं। मिश्रकव्यवहार में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समकुट्टीकरण, विषमकुट्टीकरण, और मिश्रकुट्टीकरण आदि अनेक प्रकार के गणित हैं। पाटीगणित और रेखागणित की दृष्टि से इसमें अनेक विशेषताएँ हैं। इसके क्षेत्रव्यवहार प्रकरण में आयत को वर्ग और वर्ग को वृत्त में परिणत करने के सिद्धान्त दिये गये हैं। समत्रिभुज, विषमत्रिभुज, समकोण, चतुर्भुज, विषमकोण चतुर्भुज, वृत्तक्षेत्र, सूची व्यास, पंचभुजक्षेत्र एवं बहुभुजक्षेत्रों का क्षेत्रफल तथा घनफल निकाला गया है।

ज्योतिष पटल में ग्रहों के चार क्षेत्र, सूर्य के मण्डल, नक्षत्र और ताराओं के संस्थान, गति, स्थिति और संख्या आदि का प्रतिपादन किया है।

चन्द्रसेन के द्वारा 'केवलज्ञान होरा' नामक महत्त्वपूर्ण विशालकाय ग्रन्थ लिखा गया है। यह ग्रन्थ कल्याणवर्मा के पीछे का रचा गया प्रतीत होता है। इसके प्रकरण सारावली से मिलते-जुलते हैं, पर दक्षिण में रचना होने के कारण कर्णाटक प्रदेश के ज्योतिष का पूर्ण प्रभाव है। इन्होंने ग्रंथ के विषय को स्पष्ट करने के लिए बीच-बीच में कन्नड़ भाषा का भी आश्रय लिया है। इस ग्रन्थ अनुमानतः चार हजार श्लोकों में पूर्ण हुआ है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा है—

होरा नाम महाविद्या वक्तव्यं च भवद्धितम्।
ज्योतिर्ज्ञानैकसारं भूषणं बुधपोषणम्॥

उन्होंने अपनी प्रशंसा भी प्रचुर परिणाम में की है—

आगमः सदृशो जैनः चन्द्रसेनसमो मुनिः।
केवलीसदृशी विद्या दुर्लभा सचराचरे॥

इस ग्रन्थ में हेमप्रकरण, दाम्यप्रकरण, शिलाप्रकरण, मृत्तिका प्रकरण, वृक्ष प्रकरण, कार्पास-गुल्म बल्कल-तृण-रोम-चर्म-पटप्रकरण, संख्या प्रकरण, नष्ट द्रव्य प्रकरण, निर्वाह प्रकरण, अपत्य प्रकरण, लाभालाभ प्रकरण, स्वर प्रकरण, स्वप्न प्रकरण, वास्तु प्रकरण, भोजन प्रकरण, देहलोहदिक्षा प्रकरण, अंजन विद्या प्रकरण एवं विष विद्या प्रकरण, आदि हैं। ग्रन्थ को आद्योपान्त देखने से अवगत होता है कि यह संहिता-विषयक रचना है, होराविषयक नहीं।

श्रीधर—ये ज्योतिष शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान हैं। इनका समय दसवीं शती का अंतिम भाग है। ये कर्णाटक प्रान्त के निवासी थे। इनकी माता का नाम अंब्बोका और पिता का नाम बलदेव शर्मा था। इन्होंने बचपन में अपने पिता से ही संस्कृत और कन्नड़-साहित्य का अध्ययन किया था। प्रारम्भ में ये शैव थे, किन्तु बाद में जैन धर्मानुयायी हो गये थे। इनकी गणितसार और ज्योतिर्ज्ञानविधि संस्कृत भाषा में तथा जातकतिलक कन्नड़-भाषा में रचनाऐं हैं। गणितसार में अभिन्न गुणक, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भिन्न, समच्छेद, भाग जाति, प्रभागजाति, भागानुबन्ध, भागमात्र जाति, त्रैराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, भाण्डप्रतिभाण्ड, मिश्रक व्यवहार, एकपत्रीकरण, सुवर्ण गणित, प्रक्षेपक गणित, समक्रयविक्रय, श्रेणीव्यवहार, खातव्यवहार, चितिव्यवहार, काष्ठक व्यवहार, राशि व्यवहार, एवं छायाव्यवहार आदि गणितों का निरूपण किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिर्ज्ञानविधि प्रारम्भिक ज्योतिष का ग्रन्थ है। इसमें व्यवहारोपयोगी मुहूर्त भी दिये गये हैं। आरम्भ में संवत्सरों के नाम, नक्षत्र नाम, योग-करण, तथा उनके शुभाशुभत्व दिये गये हैं। इसमें मासशेष, मासाधिपति शेष, दिनशेष एवं दिनाधिपति शेष आदि गणितानयन की उद्भुत प्रक्रियाएँ बतायी गयी हैं।

जातकतिलक—कन्नड भाषा में लिखित होरा या जातकशास्त्र सम्बन्धी रचना है। इस ग्रन्थ में लग्न, ग्रह, ग्रहयोग, एवं जन्मकुण्डली सम्बन्धी फलादेश का निरूपण किया गया है। दक्षिणभारत में इस ग्रन्थ का अधिक प्रचार है।

चन्द्रोन्मीलन प्रश्न भी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्नशास्त्र की रचना है। इस ग्रन्थ के कर्ता के सम्बन्ध में भी कुछ ज्ञात नहीं है। ग्रन्थ को देखने में यह अवश्य अवगत होता है कि इस प्रश्नप्रणाली का प्रचार खूब था। प्रश्नकर्ता के प्रश्नवर्णों का संयुक्त, असंयुक्त, अभिहत, अनभिहत, अभिघातित, अभिधूमित, आलिंगित और दग्ध इन संज्ञाओं में विभाजन कर प्रश्नों का उत्तर में चन्द्रोन्मीलन का खण्डन किया गया है। "प्रोक्तं चन्द्रोन्मीलनं शुक्लवस्त्रैस्तच्चाशुद्धम्" इससे ज्ञात होता है कि यह प्रणाली लोकप्रिय थी। चन्द्रोन्मीलन नाम का जो ग्रन्थ उपलब्ध है, यह साधारण है।

उत्तरमध्यकाल में फलित ज्योतिष का बहुत विकास हुआ। मुहूर्त्तजातक, संहिता, प्रश्न सामुद्रिक-शास्त्र प्रभृति विषयों की अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिखी गयी हैं। इस युग में सर्वप्रथम और प्रसिद्ध ज्योतिषी दुर्गदेव हैं। दुर्गदेव के नाम से यों तो अनेक रचनाएँ मिलती हैं, पर दो रचनाएँ प्रमुख हैं—रिट्ठसमुच्चय और अर्द्धकाण्ड। दुर्गदेव का समय सन् १०३२ माना गया है। रिट्ठसमुच्चय की रचना अपने गुरु संयमदेव के वचनानुसार की है। ग्रन्थ में एक स्थान पर संयमदेव के गुरु संयमसेन और उनके गुरु माधवचन्द्र बताए गए हैं। रिटठसमुच्चय शौरसेनी प्राकृत में २६१ गाथाओं में रचा गया है। इसमें शकुन और शुभाशुभ निमित्तों का संकलन किया गया है। लेखक ने रिष्टों के पिण्डस्थ, पदस्थ और रूपस्थ नामक तीन भेद किए हैं। प्रथम श्रेणी में अंगुलियों का टूटना, नेत्रज्योति की हीनता, रसज्ञान की न्यूनता, नेत्रों से लगातार जलप्रवाह एवं जिव्हा न देख सकना आदि को परिगणित किया है। द्वितीय श्रेणी में सूर्य और चन्द्रमा का अनेकों रूपों में दर्शन प्रज्वलित दीपक को शीतल अनुभव करना चन्द्रमा को त्रिभंगी रूप में देखना, चन्द्रलांछन का दर्शन न होना इत्यादि को ग्रहण किया है। तृतीय में निजछाया परच्छाया तथा छायापुरुष का वर्णन है। प्रश्नाक्षर, शकुन और स्वप्न आदि का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

अर्द्धकाण्ड में तेजी-मंदी का ग्रहयोग के अनुसार विचार किया गया है। यह ग्रन्थ भी १४९ प्राकृत गाथाओं में लिखा गया है।

मल्लिसेन—संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान थे। इनके पिता का नाम जिनसेन सूरि था, ये दक्षिण भारत के धारवाड जिले के अन्तर्गत गदग तालुका नामक स्थान के रहनेवाले थे। इनका समय ई. सन् १०४३ माना गया है। इनका आयसद्भाव नामक ज्योतिषग्रंथ उपलब्ध है। आरम्भ में ही कहा है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुग्रीवादिमुनीन्द्रैः रचितं शास्त्रं यदायसद्भावम् ।
तत्सम्प्रत्यार्थाभिर्विरच्यते मल्लिषेणेन ॥
ध्वजधूमसिंहमण्डल वृषखरगजवायसा भवन्त्यायाः ।
ज्ञायन्ते ते विद्भिरिहैकोत्तरगणनया चाष्टौ ॥

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि इनके पूर्व भी सुग्रीव आदि जैन मुनियों के द्वारा इस विषय की ओर रचनाएँ भी हुई थीं, उन्हींके सारांश को लेकर आयसद्भाव की रचना की गयी है। इस कृति में १९५ आर्याऐं और अन्त में एक गाथा, इस तरह कुल १९६ पद्य हैं। इसमेंध्वज, धूम, सिंह, मण्डल, वृष, खर, गज और वायस इन आठों आर्यों के स्वरूप और फलादेश वर्णित हैं।

भट्टवोसरि—आयज्ञानतिलक नामक ग्रन्थ के रचयिता दिगम्बराचार्य दामनन्दी के शिष्य भट्टवोसरि हैं। यह प्रश्नशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें २५ प्रकरण और ४१५ गाथाऐं हैं। ग्रन्थकर्त्ता की स्वोपज्ञ वृत्ति भी है। दामनन्दी का उल्लेख श्रवणबेल्गोल के शिलालेख नं. ५५ में पाया जाता है। ये प्रभाचन्द्राचार्य के सधर्मा या गुरु-भाई थे। अतः इनका समय[1] विक्रम संवत, की ११ वीं शती है और भट्टवोसरि का भी इन्हीं के आसपास का समय है।

इस ग्रन्थ में ध्वज, धूम, सिंह, गज, खर, श्वान, वृष, ध्वांक्ष इन आठ आर्यों द्वारा प्रश्नों के फलादेश का विस्तृत विवेचन किया है। इसमें कार्य-अकार्य, जय-पराजय, सिद्धि-असिद्धि आदि का विचार विस्तारपूर्वक किया गया है। प्रश्नशास्त्र की दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

उदय प्रभदेव—इनके गुरु का नाम विजयसेन सूरि था। इनका समय ई. सन् १२२० बताया जाता है। इन्होंने ज्योतिष विषयक आरम्भ सिद्धि अपरनामा व्यवहारचर्या ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ पर वि. सं. १५१४ में रत्नशेखर सूरि के शिष्य हेमहंस गणि ने एक विस्तृत टीका लिखी है। इस टीका में इन्होंने मुहूर्त सम्बन्धी साहित्य का अच्छा संकलन किया है। लेखक ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ग्रन्थोक्त अध्यायों का संक्षिप्त नामकरण निम्नप्रकार दिया है।

दैवज्ञदीपकालिकां व्यवहारचर्यामारम्भसिद्धिमुदयप्रभदेवानाम् शास्तिक्रमेण तिथिवारमयोगराशिगोचर्य-कार्यागमवास्तुविलग्नभिः।

हेमहंसगणि ने व्यवहारचर्या नाम की सार्थकता दिखलाते हुए लिखा है—

"व्यवहारं शिष्टजनसमाचारः शुभतिथिवारमादिषु शुभकार्यकरणादिरूपस्तस्य चर्या।" यह ग्रन्थ मुहूर्त चिन्तामणि के समान उपयोगी और पूर्ण है। मुहूर्त विषय की जानकारी इस अकेले ग्रन्थ के अध्ययन से की जा सकती है।

---

१. प्रशस्तिसंग्रह, प्रथम भाग, संपादक-जुगलकिशोर मुख्तार, प्रस्तावना, पृ. ९५-९६ तथा पुरातन वाक्य सूची की प्रस्तावना, पृ. १०१-१०२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजादित्य—इनके पिता का नाम श्रीपति और माता का नाम वसन्ता था। इनका जन्म कोंडिमण्डल के 'युविनबाग' नामक स्थान में हुआ था। इनके नामान्तर राजवर्म, भास्कर और वाचिराज बताये जाते हैं। ये विष्णुवर्धन राजा की सभा के प्रधान पण्डित थे, अतः इनका समय सन् ११२० के लगभग है। यह कवि होने के साथ-साथ गणित और ज्योतिष के माने हुए विद्वान थे। "कर्णाटक-कवि-चरिते" के लेखक का कथन है कि कन्नड़-साहित्य में गणित का ग्रन्थ लिखनेवाला यह सबसे बडा विद्वान् था। इनके द्वारा रचित व्यवहारगणित, क्षेत्रगणित, व्यवहाररत्न तथा जैन-गणित-सूत्रटीकोदाहरण और लीलावती ये गणित ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

पद्मप्रभसूरि—नागौर की तपागच्छीय पट्टावली से पता चलता है कि ये वादिदेव सूरि के शिष्य थे। इन्होंने भुवनदीपक या ग्रहभावप्रकाश नामक ज्योतिष का ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ पर सिंहतिलक सूरि ने वि. सं. १३३६ में एक विवृत्ति लिखी है। "जैन साहित्य नो इतिहास" नामक ग्रंथ में इन्होंने इनके गुरु का नाम विबुधप्रभ सूरि बताया है। भुवनदीपक का रचनाकाल वि. सं. १२९४ है। यह ग्रन्थ छोटा होते हुए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें ३६ द्वारा-प्रकरण हैं। राशिस्वामी, उच्चनीचत्व, मित्रशत्रु, राहु का गृह, केतुस्थान, ग्रहों के स्वरूप, द्वादश भावों से विचारणीय बातें, इष्टकालज्ञान, लग्न सम्बन्धी विचार, विनष्टगृह, राजयोग का कथन, लाभालाभ विचार, लग्नेश की स्थिति का फल, प्रश्न द्वारा गर्भ विचार, प्रश्न द्वारा प्रसवज्ञान, यमजविचार, मृत्युयोग, चौर्यज्ञान, द्रेष्काणादि के फलों का विचार विस्तार से किया है। इस ग्रन्थ में कुल १०० श्लोक हैं। इसकी भाषा संस्कृत है।

नरचन्द्र उपाध्याय—ये कातदहगच्छ के सिंहसूरि के शिष्य थे। इन्होंने ज्योतिषशास्त्र के कई ग्रन्थों की रचना की है। वर्त्तमान में इनके बेड़ा जातक वृत्ति, प्रश्न शतक, प्रश्न चतुर्विंशतिका, जन्म-समुद्रटीका, लग्नविचार और ज्योतिषप्रकाश उललब्ध हैं। नरचन्द्र ने सं. १३२४ में माघ सुदि ८ रविवार को बेड़ाजातक वृत्ति की रचना १०५० श्लोक प्रमाण में की है। ज्ञानदीपिका नाम की एक अन्य रचना भी इनकी मानी जाती है। ज्योतिषप्रकाश, संहिता और जातकसंबंधी महत्त्वपूर्ण रचना है।

अट्ठकवि या अर्हदास—ये जैन ब्राह्मण थे। इनका समय ईस्वी सन् १३०० के आसपास है। अर्हदास के पिता नागकुमार थे। अर्हदास कन्नड़-भाषा के प्रकाण्ड विद्वान थे। इन्होंने कन्नड़ में अट्ठमत नामक ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। शक संवत् की चौदहवीं शताब्दी में भास्कर नाम के आन्ध्र कवि ने इस ग्रंथ का तेलगू भाषा में अनुवाद किया था। अट्ठमत में वर्षा के चिन्ह, आकस्मिक लक्षण, शकुन, वायुचक्र, गृहप्रवेश, भूकम्प, भूजातफल, उत्पात लक्षण, परिवेष लक्षण, इन्द्रधनुर्लक्षण, प्रथम-गर्भलक्षण, द्रोणसंख्या, विद्युतलक्षण, प्रतिसूर्यलक्षण, संवत्सरफल, ग्रहद्वेष, मेघों के नाम, कुलवर्ण, ध्वनि-विचार, देशवृष्टि, मासफल, राहुचन्द्र, १४ नक्षत्रफल, संक्रान्ति फल आदि विषयों का निरूपण किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महेन्द्रसूरि—ये भृगुपुर[1] निवासी मदन सूरि के शिष्य फिरोजशाह तुगलक के प्रधान सभापण्डित थे। इन्होंने नाडीवृत्त के धरातल में गोलपृष्ठस्थ सभी वृत्तों का परिणमन करके यन्त्रराज नामक ग्रह गणित का उपयोगी ग्रन्थ लिखा है। इनके शिष्य मलयेन्दु सूरि ने इस पर सोदाहरण टीका लिखी है। इस ग्रन्थ में परमाक्रान्ति २३ अंश ३५ कला मानी गयी है। इसकी रचना शक संवत् १२९२ में हुई है। इसमें गणिताध्याय, यन्त्रघटनाध्याय, यन्त्ररचनाध्याय, यन्त्रशोधनाध्याय और यन्त्रविचारणाध्याय ये पांच अध्याय हैं। क्रमोत्क्रमज्यानयन, भुजकोटिज्या का चापसाधन, क्रान्तिसाधक धुज्याखंडसाधन, धुज्या-फलानयन, सौम्य गणित के विभिन्न गणितों का साधन, अक्षांश से उन्नतांश साधन, ग्रन्थ के नक्षत्र ध्रुवादिक से अभीष्ट वर्ष के ध्रुवादिक का साधन, नक्षत्रों के दृक्कर्मसाधन, द्वादश राशियों के विभिन्न वृत्त सम्बन्धी गणितों का साधन, इष्ट शन्कु से छायाकरण साधन यन्त्रशोधन प्रकार और उसके अनुसार विभिन्न राशि नक्षत्रों के गणित का साधन, द्वादशभाव और नवग्रहों के स्पष्टीकरण का गणित एवं विभिन्न यन्त्रों द्वारा सभी ग्रहों के साधन का गणित बहुत सुन्दर ढंग से बताया गया है! इस ग्रन्थ में पंचांग निर्माण करने की विधि का निरूपण किया है।

भद्रबाहु संहिता अष्टांग निमित्त का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके आरम्भ के २७ अध्यायों में निमित्त और संहिता विषय का प्रतिपादन किया गया है। ३० वें अध्याय में अरिष्टों का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ का निर्माण श्रुतकेवली भद्रबाहु के वचनों के आधार पर हुआ है। विषयनिरूपण और शैली की दृष्टि से इसका रचनाकाल ८–९ वीं शती के पश्चात् नहीं हो सकता है। हां, लोकोपयोगी रचना होने के कारण उसमें समय–समय पर संशोधन और परिवर्त्तन होता रहा है।

इस ग्रन्थ में व्यंजन, अंग, स्वर, भौम, छन्न, अन्तरिक्ष, लक्षण एवं स्वप्न इन आठों निमित्तों का फलनिरूपणसहित विवेचन किया गया है। उल्का, परिवेशण, विद्युत, अभ्र, सन्ध्या, मेघ, वात, प्रवर्षण, गन्धर्वनगर, गर्भलक्षण, यात्रा, उत्पात, ग्रहचार, ग्रहयुद्ध, स्वप्न, मुहूर्त, तिथि, करण, शकुन, पाक, ज्योतिष, वास्तु, इन्द्रसम्पदा, लक्षण, व्यंजन, चिन्ह, लग्न, विद्या, औषध, प्रभृति सभी निमित्तों के बलाबल, विरोध और पराजय आदि विषयों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। यह निमित्तशास्त्र का बहुत ही महत्त्व-पूर्ण और उपयोगी ग्रन्थ है। इससे वर्षा, कृषि, धान्यभाव, एवं अनेक लोकोपयोगी बातों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

केवलज्ञान प्रश्नचूडामणि के रचयिता समन्तभद्र का समय १३ वीं शती है। ये समन्त विजयप के पुत्र थे। विजयप के भाई नेमिचन्द्र ने प्रतिष्ठातिलक की रचना आनन्द संवत्सर में चैत्रमास की पंचमी को की है। अतः समन्तभद्र का समय १३ वीं शती है। इस ग्रन्थ में धातु, मूल, जीव, नष्ट, मुष्टि, लाभ,

---

१. अभूत् भृगुपुरे वरे गणकचक्र–चूडामणिः
कृती नृपीतसंस्तुतो मदनसूरिनामा गुरुः।
तदीयपदशालिना विरचिते सुयन्त्रागमे,
महेन्द्रगुरुणोद्धताजनि विचारणि यन्त्रजा॥ यन्त्रराज, अ. ५, श्लोक ६८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हानि, रोग, मृत्यु, भोजन, शयन, शकुन, जन्म, कर्म, अस्त्र, शल्य, वृष्टि, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सिद्धि, असिद्धि आदि विषयों का प्ररूपण किया गया है। इस ग्रन्थ में अ च ट त प य श अथवा आ ए क च ट प य श इन अक्षरों का प्रथम वर्ग, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष इन अक्षरों का द्वितीय वर्ग, इ ओ ग ज ड द ब ल स इन अक्षरों का तृतीय वर्ग, ई औ घ झ भ व ह न अक्षरों का चतुर्थ वर्ग और उ ऊ ण न भ अं अः इन अक्षरों का पंचम वर्ग बताया गया है। प्रश्नकर्ता के वाक्य या प्रश्नाक्षरों को ग्रहण कर संयुक्त, असंयुक्त, अभिहित और अभिघातित इन पांचों द्वारा तथा आलिंगित अभिधूमित और दग्ध इन तीनों क्रियाविशेषणों द्वारा प्रश्नों के फलाफल का विचार किया गया है। इस ग्रन्थ में मूक प्रश्नों के उत्तर भी निकाले गये हैं। यह प्रश्नशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।

हेमप्रभ—इनके गुरु का नाम देवेन्द्रसूरि था। इनका समय चौदहवीं शती का प्रथम पाद है। संवत १३०५ में त्रैलोक्यप्रकाश रचना की गयी है। इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—त्रैलोक्यप्रकाश और मेघमाला।[1]

त्रैलोक्यप्रकाश बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें ११६० श्लोक हैं। इस एक ग्रन्थ के अध्ययन से फलित ज्योतिष की अच्छी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। आरंभ में ११० श्लोकों में लग्नज्ञान का निरूपण है। इस प्रकरण में भावों के स्वामी, ग्रहों के छः प्रकार के बल, दृष्टिविचार, शत्रु, मित्र,—वक्री मार्गी, उच्च–नीच, भावों की संज्ञाएँ, भावराशि, ग्रहबल विचार आदि का विवेचन किया गया है। द्वितीय, प्रकरण में योगविशेष—धनी, सुखी, दरिद्र, राज्यप्राप्ति, सन्तानप्राप्ति, विद्याप्राप्ति, आदि का कथन है। तृतीय प्रकरण, में निधिप्राप्ति घर या जमीन के भीतर रखे गये धन और उस धन को निकालने की विधि का विवेचन है। यह प्रकरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इतने सरल और सीधे ढंग से इस विषय का निरूपण अन्यत्र नहीं है। चतुर्थ प्रकरण भोजन और पंचम ग्राम पृच्छा है। इन दोनों प्रकरणों में नाम के अनुसार विभिन्न दृष्टियों से विभिन्न प्रकार के योगों का प्रतिपादन किया गया है। षष्ठ पुत्र प्रकरण है, इसमें सन्तान प्राप्ति का समय, सन्तान संख्या, पुत्र-पुत्रियों की प्राप्ति आदि का कथन है। सप्तम प्रकारण में छठे भाव से विभिन्न प्रकार के रोगों का विवेचन, अष्टम में सप्तम भाव से दाम्पत्य संबंध और नवम में विभिन्न दृष्टियों से स्त्री–सुख का विचार किया गया है। दशम प्रकरण में स्त्रीजातक–स्त्रियों की दृष्टि से फलाफल का निरूपण किया गया है। एकादश में परचक्रगमन, द्वादश में गमनागमन, त्रयोदश में युद्ध, चतुर्दश में सन्धिविग्रह, पंचदश में वृक्षज्ञान, षोडश में ग्रह दोष–ग्रह पीड़ा, सप्तदश में आयु, अष्टादश में प्रवहण और एकोनविंश में प्रवज्या का विवेचन किया है। बीसवें प्रकरण में राज्य या पदप्राप्ति, इक्कीसवें में वृष्टि, बाईसवें में अर्धकाण्ड, तेईसवें में स्त्रीलाभ, चौबीसवें में नष्ट वस्तु की प्राप्ति एवं पच्चीसवें में ग्रहों के उदयास्त, सुभिक्ष–दुर्भिक्ष, महर्घ, समर्घ, और विभिन्न प्रकार से तेजी–मन्दी की जानकारी बतलाई गयी है। इस ग्रंथ की प्रशंसा स्वयं ही इन्होंने की है।[2]

१. जैन ग्रन्थावली, पृ. ३५६. २. त्रैलोक्यप्रकाश, श्लो. ४३०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद्देवेन्द्रसूरीणां शिष्येण ज्ञानदर्पणः ।
विश्वप्रकाशकश्चक्रे श्रीहेमप्रभसूरिणा ॥

श्री देवेन्द्र सूरि के शिष्य श्री हेमप्रभ सूरि ने विश्वप्रकाशक और ज्ञानदर्पण इस ग्रन्थ को रचा ।

मेघमाला की श्लोक संख्या १०० बतायी गयी है । प्रो. एच. डी. वेलंकर ने जैन ग्रंथावली में उक्त प्रकार का ही निर्देश किया है ।

रत्नशेखर सूरि ने दिनशुद्धदीपिका नामक एक ज्योतिष ग्रन्थ प्राकृत भाषा में लिखा है । इनका समय १५ वीं शती बताया जाता है । ग्रन्थ के अन्त में निम्न प्रशस्ति गाथा मिलती है ।

सिरिक्यरसेण गुरुपट्ट–नाहीसरिहेमतिलयसूरीणं ।
पायपसाया एसा, रयणसिहरसूरिणा विहिया ॥१४४॥

वज्रसेन गुरु के पट्टधर श्री हेमतिलक सूरि के प्रसाद से रत्नशेखर सूरि ने दिनशुद्धि प्रकरण की रचना की ।

इसे " मुनिमणभवणपयासं " अर्थात् मुनियों के मन रूपी भवन के प्रकाशित करनेवाला कहा है । इसमें कुल १४४ गाथाएँ हैं । इस ग्रन्थ में वारद्वार, कालहोरा, वारप्रारम्भ, कुलिकादियोग, वर्ज्यप्रहर, नन्दभद्रादि संज्ञाएं, क्रूरतिथि, वर्ज्यतिथि, दग्धातिथि, करण, भद्राविचार, नक्षत्रद्वार, राशिद्वार, लग्नद्वार, चन्द्र-अवस्था, शुभरवियोग, कुमारयोग, राजयोग, आनन्दादि योग, अमृतसिद्धियोग, उत्पादियोग, लग्नविचार, प्रयाण-कालीन शुभाशुभ विचार, वास्तु मुहूर्त, षडष्टकादि, राशिकूट, नक्षत्रयोनि विचार, विविध मुहूर्त्त, नक्षत्र दोष विचार, छायासाधन और उसके द्वारा फलादेश एवं विभिन्न प्रकार के शकुनों का विवेचन किया गया है । यह ग्रन्थ व्यवहारोपयोगी है ।

चौदहवीं शताब्दी में ठक्कर फेरू का नाम भी उल्लेखनीय है । इन्होंने गणितसार और जोइससार ये दो ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण लिखे हैं । गणितसार में पाटीगणित और परिकर्माष्टक की मीमांसा की गयी है । जोइससार में नक्षत्रों की नामावलि से लेकर ग्रहों के विभिन्न योगों का सम्यक् विवेचन किया गया है ।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अरिरिक्त हर्षकीर्ति कृत जन्मपत्रपद्धति, जिनवल्लभ कृत स्वप्नसंहितका, जय-विजय कृत शकुनदीपिका, पुण्यतिलक कृत ग्रहायुसाधन, गर्गमुनि कृत पासावली, समुद्र कवि कृत सामुद्रिक-शास्त्र मानसागर, कृत मानसागरीपद्धति, जिनसेन कृत निमित्तदीपक आदि ग्रन्थ भी महत्त्वपूर्ण हैं । ज्योतिष-सार, ज्योतिषसंग्रह, शकुनसंग्रह, शकुनदीपिका, शकुनविचार, जन्मपत्री पद्धति, ग्रहयोग, ग्रहफल, नाम के अनेक ऐसे संग्रह ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनके कर्ता का पता ही नहीं चलता है ।

अर्वाचीन काल में कई अच्छे ज्योतिर्विद् हुए हैं जिन्होंने जैन ज्योतिष साहित्य को बहुत आगे बढ़ाया है ।[1] यहाँ प्रमुख लेखकों का उनकी कृतियों के साथ परिचय दिया जाता है । इस युग के सब से

१. केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि का प्रस्तावना भाग.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमुख मेघविजय गणि हैं। ये ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनका समय वि० सं० १०३६ के आसपास माना गया है। इनके द्वारा रचित मेघ महोदय या वर्षप्रबोध, उदयदीपिका, रमलशास्त्र और हस्तसंजीवन आदि मुख्य हैं। वर्षप्रबोध में १३ अधिकार और ३५ प्रकरण हैं। इसमें उत्पात प्रकरण, कर्पूरचक्र, पद्मिनीचक्र, मण्डलोपकरण, सूर्य और चन्द्रग्रहण का फल, मास, वायु विचार, संवत्सर का फल, ग्रहों के उदयास्त और वक्री अयन मास पक्ष विचार, संक्रान्ति फल, वर्ष के राजा, मंत्री, धान्येश, रसेश आदि का निरूपण, आय-व्यय विचार, सर्वतोभद्रचक्र एवं शकुन आदि विषयों का निरूपण किया गया है। ज्योतिष विषय की जानकारी प्राप्त करने के लिये यह रचना उपयोगी है।

हस्तसंजीवन में तीन अधिकार हैं। प्रथम दर्शनाधिकार में हाथ देखने की प्रक्रिया, हाथ की रेखाओं पर से ही मास, दिन, घटी, पल आदि का कथन एवं हस्तरेखाओं के आधार पर से ही लग्नकुण्डली बनाना तथा उसका फलादेश निरूपण करना वर्णित है। द्वितीय स्पर्शनाधिकार में हाथ की रेखाओं के स्पर्श पर से ही समस्त शुभाशुभ फल का प्रतिपादन किया गया है। इस अधिकार में मूल प्रश्नों के उत्तर देने की प्रक्रिया भी वर्णित है। तृतीय विमर्शनाधिकार में रेखाओं पर से ही आयु, सन्तान, स्त्री, भाग्योदय, जीवन की प्रमुख घटनाएँ, सांसारिक सुख, विद्या, बुद्धि, राज्यसम्मान और पदोन्नति का विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ सामुद्रिक शास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और पठनीय है।

उभयकुशल—का समय १८ वीं शती का पूर्वार्द्ध है। ये फलित ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने विवाह पटल और चमत्कारचिन्तामणि टबा नामक दो ग्रन्थों की रचना की है। ये मुहूर्त और जातक, दोनों ही विषयों के पूर्ण पंडित थे। चिन्तामणि टबा में द्वादश भावों के अनुसार ग्रहों के फलादेश का प्रतिपादन किया गया है। विवाह पटल में विवाह के मुहुर्त और कुण्डली मिलान का सांगोपांग वर्णन किया गया है।

लब्धचन्द्रगणि—ये खरतरगच्छीय कल्याणनिधान के शिष्य थे। इन्होंने वि. सं. १०५१ में कार्तिक मास में जन्मपत्री पद्धति नामक एक व्यवहारोपयोगी ज्योतिष का ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ में इष्टकाल, मयात, भयोग, लग्न, नवग्रहों का स्पष्टीकरण, द्वादशभाव, तात्कालिक चक्र, दशबल, विंशोत्तरी दशा साधन आदि का विवेचन किया गया है।

बाधती मुनि—ये पार्श्व चन्द्रगच्छीय शाखा के मुनि थे। इनका समय वि. सं. १०८३ माना जाता है। इन्होंने तिथिसारिणी नामक ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। इसके अतिरिक्त इनके दो-तीन फलित-ज्योतिष के भी मुहूर्त सम्बन्धी उपलब्ध ग्रन्थ हैं। इनका सारणी ग्रन्थ, मकरन्द सारणी के के समान उपयोगी है।

यशस्वतसागर—इनका दूसरा नाम जसवंतसागर भी बताया जाता है। ये ज्योतिष, न्याय, व्याकरण और दर्शन शास्त्र के धुरन्धर विद्वान थे। इन्होंने ग्रहलाघव के ऊपर वार्तिक नाम की टीका लिखी है। वि. सं. १०६२ में जन्मकुण्डली विषय को लेकर "यशोराज-पद्धति" नामक एक व्यवहारोपयोगी ग्रन्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखा है। यह ग्रन्थ जन्मकुंडली की रचना के नियमों के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालता है। उत्तरार्द्ध में जातक पद्धति के अनुसार संक्षिप्त फल बतलाया है।

इनके अतिरिक्त विनयकुशल, हरिकुशल, मेघराज, जिनपाल, जयरत्न, सूरचन्द्र, आदि कई ज्योतिषियों की ज्योतिष सम्बन्धी रचनाएँ उपलब्ध हैं। जैन ज्योतिष साहित्य का विकास आज भी शोध टीकाओं का निर्माण एवं संग्रह ग्रन्थों के रूप में हो रहा है।[1] संक्षेप में अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमितिगणित, प्रतिमागणित, पंचांग निर्माण गणित, जन्मपत्र निर्माण गणित आदि गणित-ज्योतिष के अंगों के साथ होराशास्त्र, संहिता,[2] मुहूर्त, सामुद्रिकशास्त्र, प्रश्नशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, निमित्तशास्त्र, रमल-शास्त्र, पासाकेवली प्रभृति फलित अंगों का विवेचन जैन ज्योतिष में किया गया है। जैन ज्योतिष साहित्य के अब तक पाँच सौ ग्रन्थों का पता लग चुका है।[3]

---

१. भद्रबाहु संहिता का प्रस्तावना अंश.

२. महावीर स्मृतिग्रन्थ के अन्तर्गत "जैन ज्योतिष की व्यावहारिकता" शीर्षक निबन्ध, पृ. १९६–१९७.

३. वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ के अन्तर्गत 'भारतीय ज्योतिष का पोषक जैन ज्योतिष', पृ. ४७८–४८४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org